

ऋषि-दर्शन

चमूपति एम० ए०



ओ३म्

ऋषि-दर्शन

लेखक—

पं० चमूपति एम० ए०

प्रकाशक—

आर्य समाज

लक्ष्मणसर अमृतसर

मूल्य १२ पैसे

प्रस्तावना ।

जितने सर्वहितकारार्थ प्रयत्न के प्रकार हैं उतने ही ऋषि दयानन्द के जीवन के पक्ष हैं। देशभक्त को दयानन्द देश भक्ति का आदर्श प्रतीत होता है तो धर्म भक्त को धर्मभक्ति का सर्वांगसुन्दर उदाहरण। समाजसुधार और आचार सुधार एक साथ दयानन्द की दृष्टि के लक्ष्य थे। शिक्षा प्राप्त कैसे की जाय और दी कैसे जाय? शरीर बनाया कैसे जाय और उस का उपयोग क्या हो? सदाचार का संगठन कैसे हो और शिक्षण कैसे? विद्या कौन कौन सी और किस किस ढंग से उपलब्ध की जाय? इन सब समस्याओं का उत्तर ऋषि के ग्रन्थों में भी मिलता है और जीवन में भी! प्रत्येक ऐसे मनुष्य के लिये जो आत्मोन्नति का उत्सुक है, ऋषि जीवन का अध्ययन अत्यन्त लाभकारी होगा। ऋषि दर्शन उन सज्जनों के लिये लिखा गया है जिन्हें ऋषि के विस्तृत जीवनचरित के अध्ययन का अवसर नहीं मिलता। संभव है इसी से ऋषि के चमत्कार की झलक उनके जीवन में पड़ जाए।

चमूपति

ओ३म्

ऋषि-दर्शन

जन्म

ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि होने का गौरव गुजरात प्रान्त को है। पिता जन्म के ब्राह्मण थे, और भूमिहारी तथा जमादारी का कार्य करते थे। शिव के बड़े भक्त थे। शिवरात्रि के दिन बालक को मन्दिर में ले गए और उसे उपवास करा जागरण का आदेश दिया। जब बड़ें बड़े शिव-भक्त सोगए, यह भावी ऋषि प्रयत्न पूर्वक जागता रहा। गीता के कथनानुसार

या निशा सर्वभूतानां तस्याँ जागर्ति संयमी।

शिवरात्रि

इन के हृदय में भक्ति का नया उदय हुआ था। यह इसी रात में शिव को रिझा देना चाहते थे। नींद आती पर यह पानी के छींटों से उसे दूर भगाते। इतने में एक चूहे ने सचेत किया। उस क्षुद्र पशु को महान् पशुपति के आगे उद्धत होता देख कर विचार आया हो न हो यह शिव नहीं। दूसरों का व्रतभंग आलस्य ने किया था इनका तर्क ने। तर्क जीवन की भूमिका था, आलस्य मौत की! शिवरात्रि बीत गई, परन्तु शिवरात्रि की घटना हृदय में गड़

मृत्यु के दृश्य

सी गई। मूलशंकर के बढ़ते यौवन को दूसरी चेतावनी अपने चाचे और भगिनी की मृत्यु से मिली। चाचे के लाड़ले थे, उनका वियोग सहा न जाता था भगिनी को महामारी ने मारा। इन दो मृत्युओं का प्रभाव एक सा नहीं हुआ। प्रथम मृत्यु पर आश्चर्य चकित रहे और पाषाण-हृदय की उपाधि पाई, दूसरी पर बिलख बिलख कर रोए।

शिक्षा और गृहत्याग

मूल शंकर की शिक्षा का प्रबन्ध इनके बाल्यकाल में किया गया था। इन्हें यजुर्वेद कण्ठस्थ था और भी बहुत कुछ पढ़ा लिखा करते थे। पिता को पता लगा कि बालक पर वैराग्य का भूत सवार है। महात्मा बुद्ध के पिता की तरह इन्हें विवाह की डोरों में फांसने की ठानी। परन्तु ठीक विवाह की रात्रि को मूलशंकर घर से लुप्त हो गये।

वन यात्रा

मूलशकर की वनयात्रा की कथा बहुत लम्बी है। पहले तो किसी ने ठग लिया। इन्हें शुद्ध चेतन नाम देकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाया। फिर यह सन्यासी हुए और दयानन्द नाम पाया। योगियों के पास योग साधन सीखते रहे। समाधि का आनन्द लाभ किया। गिरि-गुहाओं में घण्टों बिताए। पुस्तकें खोजीं और उनका

अध्ययन किया। मैदानों में सोए, वृक्षों की शाखाओं में विश्राम किया। मूल कन्द खाकर भूख मिटाई। सार यह कि पूर्ण वनचर का सा जीवन व्यतीत किया।

गुरु विरजानन्द के चरणों में

३६ वर्ष से ऊपर के थे जब दंडी विरजानन्द के द्वार पर विद्या-वित्त के भिक्षु हुए। वहाँ पहली भेंट यह धरनी पड़ी कि जो पुस्तक पढ़ें हैं सब यमुना मैय्या के अर्पण करो। हाथ-लिखे पुस्तक बड़ी कठिनता से हाथ आए थे। पर गुरु-मुख का उपदेश भी तो सुलभ न था। जी कड़ा किया और गुरु की आज्ञा पालन की। आदर्श शिष्य आदर्श गुरु के चरणों में आदर्श शिक्षा प्राप्त कर रहा था। नित्य प्रति यमुना के जल से गुरुजी को स्नान कराते। कुटी में झाड़ू देते, गुरु की सेवा शुश्रूषा करते। गुरु ने एक दिन डण्डे से ताड़ना की, यतिवर ने गुरु-गौरव का प्रसाद मान स्वीकार की। अन्त में दीक्षान्त का समय आया। निर्धन ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणार्थ लौंगों की भीख मांग लाया। हा दैव! स्वीकार न हुई। 'क्या भेंट धरूँ?' जो तुम्हारे पास हो'। 'मेरे पास मेरे अपने सिवा कुछ नही'। 'तो अपना आप भेंट धरो'। भेंट धरी गई। गुरु ने अंगीकार की। 'वही अपने आपकी भेंट मानो आर्य समाज की स्थापना

का प्रथम बीज थी। दयानन्द विरजानन्द का हुआ और विरजानन्द के हाथों सारे ससार का।

अब पुष्कर के मेले में दयानन्द पहुंचता है, कुम्भ के महोत्सव में दयानन्द गरजता है। वेद से उलटे जाते वैदिकधर्मियों को वेद के पथ पर लाना चाहता है। एक ओर सारी भ्रान्त आर्य जाति है, दूसरी ओर अकेला दण्डधारी दयानन्द। 'पाखण्ड खण्डनी पताका' के नीचे खड़ा कौपीनधारी ब्रह्मचारी आते जाते के लिए अचम्भा था। लोग कहते थे, गंगा के प्रवाह को रोकने का सामर्थ्य इस में कहाँ? स्वयं भगीरथ आएं तो न रोक सकें।

पाखण्ड-खण्डनी

ऋषि गरज गरज कर हार गए। गंगा बहती गई और उस के साथ हिन्दू भ्रान्तियों का प्रवाह भी बहता गया। ऋषि ने डेरा डण्डा उठाया और वनों की राह ली। पूर्ण वीतराग होने का व्रत किया कि कौपीन के अतिरिक्त कोई चीज़ पास न रखेंगे। महाभाष्य की एक प्रति पास थी, सो भी गुरुवर की सेवा में भेज दी। इसी कौपीन में दयानन्द सोते, इसी में फिरते। नहाकर इसे सूखने को डालते और स्वयं पद्मासन लगा कर बैठ

तपस्या की पराकाष्ठा

रहते । हिमाछन्न नालों में क्या और जलती रेतों पर क्या दयानन्द का यही पहरावा रहा ।

कोई दो वर्ष दयानन्द ने इस प्रकार तितिक्षा में काटे । फिर प्रचार में प्रवृत्त हुए । शास्त्रार्थ पर शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ

करते चले गए । हीरा वल्लभ नाम के एक प्रौढ़ पण्डित ने सप्ताह भर संस्कृत में शास्त्रार्थ किया । उनका संकल्प था कि ऋषि से मूर्ति को भोग लगवा कर उठूंगा । ऋषि का पक्ष सुना तो ठाकुर जी को उठा कर गंगा में प्रवाहित किया और मुक्तकण्ठ से माना कि मूर्ति-पूजा शास्त्र विरुद्ध है ।

ऋषि के उपदेश में जादू था । कंठियां उतरवादीं, मूर्तियां फेंकवादीं, तिलक छाप की रीति मिटादी । गायत्री का प्रचार किया । सन्ध्या लिख लिख कर बांटी । स्त्रियों को मन्त्रजाप का अधिकार दिया । जाटों राजपूतों को यज्ञोपवीत पहनाए ।

चान्दापुर के शास्त्रार्थ में ऋषि ने आर्य जाति के इतिहास में एक नए युग का बीजारोपण किया ।

आर्य धर्म की जय

आर्य आर्य तो आपस में विवाद करते ही थे । मुसलमानों ईसाईयों से इनकी कभी न ठनी थी । इस से पूर्व प्रथा यह थी कि अहिन्दू हिन्दुओं का खण्डन करें और हिन्दू चुप रह कर सहन करते जाएं । आर्य धर्म आटे

का दिया था। कच्चा तागा था, ऋषि ने इस भ्रान्ति को मिटा दिया। तीन दिन वाद होना था जिसमें मौलवियों और पादरियों के विरुद्ध ऋषि ने आर्य धर्म का पक्ष लेना स्वीकार किया था। एक ही दिन में ऋषि ने आर्य धर्म की स्थापना ऐसी दृढ़ता से की कि दूसरे दिन वहाँ प्रतिपक्षियों का चिन्हमात्र भी शेष न था। आर्य धर्म की यह विजय धर्म के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

ऋषि ने ईसाइयों को निमन्त्रण दिया, मुसलमानों को निमन्त्रण दिया, कि आर्य धर्म को परखो और स्वीकार करो। इस निमंत्रण में मोहनी शक्ति थी। सर सैयद ऋषि के चरणों में आते। पादरी स्काट ऋषि के दर्शन करते। पादरी को ऋषि 'भक्त स्काट' कहते। 'भक्त' की अनुपम उपाधि किसी आर्यसमाजी को न मिली, एक ईसाई ऋषिभक्ति का यह अपूर्व प्रसाद ले गया। मुहम्मद उमर जन्म का मुसलमान था। उसे ऋषि ने अपने हाथों आर्य बनाया और अलखधारी नाम रखा। सारे संसार के लिए आर्य धर्म का द्वार खोलने का श्रेय वर्त्तमान युग में ऋषि दयानन्द ही को है। कर्नल अल्काट और मडमब्लवैटस्की अमेरिका से चल कर ऋषि दयानन्द

अन्य मत वालों पर कृपा

के चरणों में आए। अपने पत्रों में ऋषि को 'गुरुदेव कह कर सम्बोधित करते थे।

बन्धन काटने वाला

एक दिन एक ब्राह्मण ने पान का बीड़ा ला दिया। चबाने से प्रतीत हुआ कि इसमें विष है। ऋषि उठे, गंगा पास थी, उस पर जाकर न्योली कर्म किया और विष निकाल दिया। सैयद मुहम्मद तहसीलदार था। उसने दोषी को पकड़वाया और दयानन्द के दर्बार में ले गया। ऋषि से यह सहा न गया कि किसी को उनके कारण बन्धन में डाला जाए। क्या दया-पूर्ण उत्तर दिया। मेरा काम तो बन्धन काटना है, बन्धन बढ़ाना नहीं।

बाल ब्रह्मचारी का बल

ऋषि जिस धर्म का प्रचार करना चाहते थे वह उनके जीवन में मूर्त्त रूप में विद्यमान था। दयानन्द का सब से बड़ा बल ब्रह्मचर्यबल था। बाल ब्रह्मचारी को अधिकार था कि व्यभिचारियों को डाँटे। विक्रमसिंह ने ब्रह्मचर्यबल का प्रमाण चाहा तो उसकी दो घोड़े की गाड़ी एक हाथ से पकड़ कर रोक दी। साईस बल लगाता है, घोड़े यत्न करते हैं, परन्तु गाड़ी हिलने में नहीं आती। पीछे की ओर देखा ऋषिवर गाड़ी रोके खड़े हैं। शरीर से तेज बरसता है। मुख कान्ति टकटकी लगाकर देखी नहीं जाती।

ब्रह्मचारी है और देवियों का आदर करता है। एक नन्हीं लड़की बालकों के साथ खेल रही है। ऋषि देखते ही सिर झुका देते हैं। देखने वालों को धोखा है कि सामने खड़े वृक्ष को प्रणाम किया है, देवता-निन्दक को देवता की परोक्ष शक्ति ने देवता-पूजक बनाया है। ऋषि के मुख से सुनना ही था कि 'वह देखो'! वह नन्ही बालिका मूर्त मातृ-शक्ति है, बस! सभों के मुख से निकला 'धन्य! धन्य!! देवियों के सत्कार-स्वरूप बाल ब्रह्मचारी दयानन्द! धन्य-इस एक घटना में दयानन्द के देवियों के प्रति संपूर्ण भावों का मूर्त चित्र चित्रित है। देवियों की शिक्षा हो और शिक्षा के साथ पूजा हो-यह दो सूत्र ऋषि के देवी सम्बन्धी सिद्धान्त का सार है।

देवी पूजा

दयानन्द की दृष्टि में कोई अछूत न था। उमेदा नाई खाना लाया तो भरी सभा में स्वीकार किया। भक्त की भावना गेहूं के आटे में गुंधी थी, जो भक्त वत्सल की दृष्टि में लाख जन्माभिमानों की अपेक्षा अधिक सम्मान के योग्य थी। कसाई (मज़हबी सिख) को किसी ने व्याख्यान सभा से हटाया। कहा, 'नहीं'! मेरा व्याख्यान कसाइयों के लिए है।

अछूत कोई नहीं

क्या आप जानते हैं कि सब से पहला मलकाना रुस्तम सिंह किन शुभ करकमलों द्वारा पुनीत यज्ञोपवीत से अलंकृत हुआ था ? ऋषि दयानन्द की दयाबल-बली भुजाओं ने उसे अस्पृश्यता की गहरी गुहा से उठाया और आर्यत्व के पुण्य शिखर पर बैठाया था।

ऋषि का करुणाक्षेत्र मनुष्य जाति तक परिमित नहीं था। प्राणिमात्र दयानन्द की दया के पात्र थे। ऋषि ने गोरक्षा के लिए भरसक प्रयत्न किया। एक निवेदन पत्र पर हिन्दू मुसलमान ईसाई सब के हस्ताक्षर कराए कि गो-हत्या राजनियम से बन्द की जाए। ऋषि ने अपने नाम को सार्थक किया, जब दातारपुर के बाहर सड़क पर जाते हुए एक बैल गाड़ी कीचड़ में धसी देखी। गाड़ीवान का और बस न चलता था, बैलों पर सोटों की वर्षा करता चला जाता था। बैलों ने बहुतेरी गर्दिनें हिलाईं, कन्धों पर बहुतेरा दबाव डाला, पर गाड़ी न खिची। गाड़ी वान-हार कर रह गया। ऋषि को अधिक दया गाड़ीवान पर आई या बैलों पर—यह कहना कठिन है। दोनों के हृदय कृतज्ञताभार से आभारी थे जब राजों महाराजों के गुरु लोकमान्य दयानंद ने स्वयं कीचड़ में उतर बैलों का जुआ अपनी गर्दिन पर डाला और जो भार दो बैलों से न खींचा गया था, अकेले अपने भुजाबल से जौहड़ से बाहर कर दिया।

गो रक्षा

ऋषि की लीला बहुपक्षी लीला है। जिस पक्ष पर दृष्टि डालो वही कहता है, मैं सब से मीठा हूँ। वस्तुतः गुड़ जहाँ से खाओ मीठा लगता है। इस लीला के अवसान में भी वह महत्व है जो और मनुष्यों के जीवन में नहीं।

ऋषि दयानन्द ने अन्तिम यात्रा जोधपुर की ओर की इस समय तक ऋषि ने बीसियों आर्यसमाजों की स्थापना कर ली थी। पंजाब, पश्चिमोत्तर (वर्तमान संयुक्त) प्रान्त, राजपूताना, यह सब प्रदेश चरणों में सिर झुका चुके थे। कितने राजपूत नरेश शिष्य बन चुके थे। जोधपुर में भी महाराज ने बुलाया था। चरण-सेवकों ने विनय की, "वहां के लोग क्रूर स्वभाव के पुरुष हैं, आप की शिक्षा" का गौरव नहीं समझेंगे। संभव है, प्राणों के वैरी हो जाएँ। दयावीर दयानन्द ने उत्तर दिया—"जभी तो जाता हूं। बिगड़ों के सुधार की और अधिक आवश्यकता है। रही मेरे प्राण-घात की बात, सो तो यदि मेरी उंगली उंगलीसे बत्ती का काम लिया जाए, और इसी से किसी को सीधा रास्ता सूझ जाए तो मेरे जीवन का प्रयोजन इसी बात में सिद्ध हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऋषि के पहुंचते ही राजा चरणों का भक्त हो गया, प्रजा अनुराग-रक्त हो गई। प्रतिदिन आनन्दवर्षा होने लगी।

प्रचार की धुन

निर्भयता

एक दिन राजा ने महाराज को अपने डेरे पर निमंत्रित किया। ऋषि बिना सूचना दिये जा पहुंचे। राजा के दर्बार में उसकी प्यारी वेश्या नन्ही जान आई हुई थी। राजा खिसियाने हुए। उसे पालकी में बैठाकर उठवा तो दिया परन्तु ऋषि से आँखें चार न हो सकीं। ऋषि यह कुत्सित दृश्य देखकर लाल हो गए। गरज कर कहा— सिंहों की गोद में कुत्तियों का क्या काम ?

दया-आदर्श

यह निर्भयता ऋषि के लिए विष सिद्ध हुई। विरोधियों ने दल बना लिया। कुछ दिनों ही में जगन्नाथ रसोइए को घूस देकर वीतराग योगीराज को विष दिलवा दिया। ऋषि ने उस समय भी अपनी स्वाभाविक दया से काम लिया। जगन्नाथ ने स्वयं माना, ऋषि-वर ! यह अपराध मुझ से हुआ है। ऋषि ने उसे धन दिया और आग्रह-पूर्वक कहा कि शीघ्र आंगल राज्य से बाहिर हो जाओ जिससे तुम्हारे प्राणों पर संकट न आए।

विष का प्रभाव धीरे धीरे हुआ। दस्त आने लगे। पेट का शूल बढ़ता गया। बार बार मूर्छा होने लगी। महीना भर यह क्लेश रहा। वैद्य चकित थे कि इस वेदना में ऋषि संतोष-पूर्वक जी रहे हैं। यह ऋषि का चमत्कार था।

जोधपुर से आबू और आबू से अजमेर गए। दीवाली

देहावसान

की सायंकाल को जहां घर बार गली बाज़ार में दीपक जलाए गए यह जाति-कुल-दीप, संसार-समुद्र का ज्योति-स्तम्भ देखते-देखते जगमगाती चकाचौंध से चुंध्याती रात्रि में अन्तर्हित हो गया। देखने वालों ने देखा कि बुझते दीपक ने संभाला लिया। मृत्यु समय समीप आया देखकर ऋषि सचेत हुए। क्षौर कराया, शरीर पोंछवाया, चनों का रसा लिया, प्रभु का भजन, मन्त्रों का पाठ करते रहे। अन्त में'परमेश्वर ! तैंने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो'। यह शब्द कहे और अत्यन्त आह्लाद पूर्वक प्राण त्याग दिये।

देह छोड़ते समय दयानन्द के मुख पर एक विचित्र कान्ति थी। पूर्ण किये कर्त्तव्यों का सन्तोष छाती को उभारे हुए था। जगज्जनक की गोदी में परम पिता का प्यारा पुत्र लालायित हृदय साथ लिए लौट रहा था। पिता की आज्ञा का पालन किया है, यह आल्हाद था, शान्ति थी, सन्तोष था।

दृष्टि रासायण

जीवन प्रचार में अर्पण हुआ था, मरण भी प्रचार का साधन हुआ ! गुरुदत्त एम.ए. पंजाब यूनिवर्सिटी में प्रथम रहे थे, उनकी यह ऋषि से प्रथम भेंट थी। बात चीत नहीं हुई, शंका-समाधान नहीं हुआ, प्रश्नो-

त्तर का अवसर नहीं मिला. परन्तु चंचल, शंका का अवतार तर्क-मूर्त, गुरुदत ऋषि पर आसक्त है। उसे कोई सन्देह नहीं रहा, क्षणमात्र में उसकी काया पलट हो गई है। एक दृष्टि ने कुछ का कुछ कर दिया।

ऋषि की दृष्टि रसायण है। आओ। उस दृष्टि के दर्शन करो। खोटा सिक्का है ? लाओ, खरा सोना हो जाएगा। ऋषि के जीवन के अध्ययन से शिक्षा लाभ करो। उन के ग्रंथों को पढ़ो और उनके जीवन का मिलान उनके लेखों से करो। भर्तृहरि ने कहा है

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

यह वाक्य ऋषि दयानन्द के महत्व का सार हैं।

अमर दयानन्द

आज केवल भारत ही नहीं, सारे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक संसार पर दयानन्द का सिक्का है। मतों के प्रचारकों ने अपने मन्तव्य बदल लिए हैं, धर्मपुस्तकों के अर्थों का संशोधन किया है, महापुरुषों की जीवनियों में परिवर्त्तन किया है। ऋषि का जीवन इन जीवनियों में बोलता है, ऋषि मरा नही करते, अपने भावों के रूप में जीते हैं। दलितोद्धार का प्राण कौन है ? पतित पावन दयानन्द। समाज सुधार की जान कौन है ? आदर्श सुधारक दयानन्द। शिक्षा प्रचार की प्रेरणा कहाँ से आती

है ? गुरुवर दयानन्द के आचरण से। वेद का जय जयकार कौन पुकारता है ? ब्रह्मर्षि दयानन्द। देवी सत्कार का मार्ग कौन दिखाता है ? देविपूजक दयानन्द। ब्रह्मचर्य का आदर्श कौन है ? बालब्रह्मचारी दयानन्द। गोरक्षा के मिष से प्राणिमात्र पर करुणा दिखाने का बीड़ा कौन उठाता है ? करुणानिधि दयानन्द ॥ आओ। हम अपने आप को ऋषि के रंग में रंगें। हमारा विचार ऋषि का विचार हो; हमारा आचार ऋषि का आचार हो, हमारा प्रचार ऋषि का प्रचार हो। हमारी प्रत्येक चेष्टा ऋषि की चेष्टा हो। नाड़ी-नाड़ी से ध्वनि उठे :—

ऋषि दयानन्द की जय !

मुद्रक—श्री रमेश चन्द्र गुप्त, नेताजी आर्ट प्रेस,
सुभाष रोड, जालन्धर नगर;